VOL- IX | ISSUE- XI | NOVEMBER | 2022 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 7.331 | ISSN 2349-638x

समकालीन कविता में किन्नर विमर्श

डॉ. प्रकाश कृष्णदेव धुमाल
सह आचार्य, हिन्दी विभाग
शां. घो. कला, विज्ञान एवं गो.प.वाणिज्य
महाविद्यालय शिवले, तहसिल मुरबाड, जिला-थाना(महा.)
पिन. ४२१ ४०१
Email prakashdhumal69@gmail.com

समकालीन कविता में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, विकलांग विमर्श, किसान विमर्श का बोलबाला हैं। ये सभी विमर्श 'जन विमर्श' से ही अलग होकर आज अपना झंडा फहरा रहे हैं। इन्हीं विमशो में जनजातीय विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृध्द विमर्श, बाल विमर्श भी सम्मिलित हैं। समकालीन कविता दुनियाभर के दीन-हीन, दलित, शोषित, पत्पीडित लोगों को अपने में समेटे हुए है। लेकिन समाज का एक ऐसा वर्ग भी है जो इसकी पीरिधि में अभी तक नहीं है। जिसे किन्नर, हिजड़ा नपुंसक छक्का, थर्ड जेंडर या तृतीय लिंगी कहा जाता है। इस तरफ संकेत करते हुए चित्रा मुद्गल ने लिखा है-

"दुनिया भर के तिरस्कृत, दमित, शोषित, अधिकारच्युत वंचितों, यहाँ तककि आधी आबादी और दलितों को भी हाशिये ने अपने भीतर मुट्ठी भर हाशिया उपलब्ध कराया है, लेकिन यह क्रूर विंडम्बना ही हैं कि लिंग वंचितो को हाशिये में भी कोई हाशिया नही मिला। धर्म, समजा, राजनीति और स्वयं मनुष्य ने मनुष्य होकर मनुष्यों पर सदियों-सदियों से जो यह अमानुषिक अन्याय किया है- सामाजिकता से उन्हें बहिष्कृत तिरस्कृत कर उनसे उनके मानवीय रूप से जीने का अधिकार छीन लिया है। जरूरत नहीं चेतने की कि कलंक लिंग वंचित नहीं कलंक तो वे स्वयं हैं, सभ्य समाज के माथे पर, जो रोज आईना देखकर भी अपने माथे पर उसकी कालिख को देख नहीं रहे.... ।"[१]

निश्चित रूप से यह एक भारी भूल है जिसे सहज रूप से स्वीकार करके समकालीन साहित्यकारों ने उस तरफ ध्यान दिया है। आज उपन्यास, कहानी, जीवनी, नाटक कविता आदि के माध्यम से साहित्यकार हाशिये के बाहर छूट गये इस वर्ग विशेष के प्रति अपनी संवेदना अभिव्यक्त कर रहा है। साथ ही कुछ किन्नरों ने अपनी व्यथा-कथा की आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत लेख में उसी समाज के प्रति विचार-विमर्श किया गया है।

वैशाली रोडे ने इस वर्ग विशेष के विषय में लिखा है - "'हिजड़ा' मूल उर्दू शब्द है। वो भी 'हिजर' इस अरेबिक शब्द से आया हुआ। 'हिजर' यानी अपना समुदाय छोड़ा हुआ, उस समुदाय से बाहर निकला हुआ। मतलब स्त्री-पुरूषों के हमेशा के समाज से बाहर निकलकर स्वतंत्र समाज बना के रहनेवाला। ये अर्थ इस शब्द में ही समाया हुआ हैं। हमारे पूरे देश में हिजड़ा समाज है और अलग-अलग भाषाओं में उसके लिए अलग-अलग शब्द हैं। अलग-अलग राज्यों के हिसाब से उनका इतिहास, संस्कृति भी ज़रा-जरा अलग है।

उर्दू और हिन्दी में 'हिजड़ा' शब्द है। इसके साथ ही उर्दू में 'ख्वाज़ासरा' भी कहा जाता है हिजड़ों को। अपने प्राचीन ग्रंथों में 'किन्नर' शब्द की संकल्पना है। इस वजह से हिजड़ों को हिन्दी में 'किन्नर' भी कहते हैं। मराठी में 'हिजड़ा' और 'छक्का' ये दो शब्द

प्रचलित हैं। गुजराती में उन्हे 'पावैया' कहते हैं, तो पंजाबी में 'खुस्रा' या 'जनखा'। तेलगु में 'नपुंसकुडु', 'कोज्जा', 'मादा' कहा जाता है, तो तमिल में 'थिरूनान्गाई', 'शिरूरनान गाई', 'अली', 'अरवन्नी' 'अरावन्ती', 'अरूवनी' शब्द इस्तेमाल किये जाते हैं।"[२]

संस्कृत में किन्नर को षण्ड कहा गया है। इसकी व्युत्पीत्त = सन. ड, पृषो ० षत्वम् है। षण्डक : का अर्थ नपुंसक या हिजड़ा है।[३]

गीता में श्री कृष्णने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा है-हे पृथापुत्र! इस हीन नपुंसकता को प्राप्त मत हो ओ। यह तुम्हें शोभा नहीं देती। हे शत्रुओं के दमनकर्ता! हृदय की दुर्बलता का त्याग कर युध्द के लिए खड़े होवो -

"क्लैब्यं मा स्मगमः पार्थ -
नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं -
त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।"[४]

संस्कृत में क्लैब्य, क्लीव, लिंगहीन, यौनदृष्टि से अनाकर्षक, कामभावना रहित आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। हिन्दी में जय शंकर प्रसादने 'ध्रुव स्वामिनी' नाटक में 'क्लीव' शब्द का प्रयोग नपुंसक के लिये किया है। हिन्दी में इसके समानार्थी कई शब्द प्रचलित हैं। यथा वर्जित लिंगी, नपुआ, नप्ता, नप्तका, नफरत, नफरी, नफस, नफीरी, नफीस, नफ्सानियत, जनखा, नामर्द, शिखण्डी, बृहन्नला, अण्डाकर्षित, शक्तिहीन, उभयलिंगी, खोजवा, तृतीय लिंगी, खुसर, छक्का, खिचड़ी, इण्टरसेक्स, ट्रांससेक्सुअल, जीरो, ट्रांसजेण्डर, थर्ड जेण्डर आदि। सामान्य तौर पर जो लौंगिक रूप से न तो नर होते हैं और न मादा उन्हें ही किन्नर कहा जाता हैं।

सन २०१६ में ब्रिटेन आवासीय स्कूल एसोसिएशन द्वारा आवासीय स्कूलों के शिक्षकों को आदेश दिया गया कि वे ट्रांसजेण्डर बच्चों को 'ही' या 'शी' की बजाय 'जी' कहकर बुलायें ताकि वे असहज महसूस न करें... यूरोप में 'जी' को एक लिंग-निरपेक्ष उच्चारण माना जाता है।

किसी भी भाषा में चाहे जो कहके बुलाएँ तो भी 'हिजड़ा' संकल्पना थोड़े से फ़र्क से वही है। 'हिजड़ा' पुरूष के रूप मे जन्म लेता है। बचपन से पुरूष के रूप में ही बड़ा होता है..लेकिन मूल रूप से ही उसकी लैंगिकता अलग होती है। बड़ा होते -होते वो स्त्री की भूमिका अपनाने लगता है। उसका दिखना बर्ताव करना, चाल-ढाल, हाव-भाव सभी लड़कियो की तरह होने लगते हैं। उसे खुद भी इसका एहसास होने लगता है। लेकिन समाज की नजर में ये बातें खलने लगती हैं और लोग उसे चिढ़ाने लगते हैं। वो बिल्कुल नासमझ होते हैं, ऐसा नही हैं और बहुत कुछ समझ में आता है, ऐसा भी नहीं है। ऐसी कच्ची उम्र के ये लड़के फिर उलझन में आ जाते हैं, अकेले रहने लगते हैं। 'मै कौन हूँ', इस सवाल का जवाब हर तरह से खोजते रहते हैं और फिर 'मैं औरत हूँ' ऐसा तय करके औरतों जैसे ही यानी हिजड़ा बनते हैं।

प्रस्तुत लेख में षण्ड, या नपुंसक या हिजड़ा के लिए मैंने 'किन्नर' शब्द का प्रयोग किया है। किन्नर वह जाति है, जिसने देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों के साथ स्थान पाया है। भारतीय हिन्दू संस्कृति में प्राचीन काल से ही किन्नरों का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। किन्नरों के बिना भारतीय संस्कृति अधूरी है।

भौगोलिक दृष्टि से किन्नर हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले की एक जनजाति है, जिनकी अपनी भाषा, संस्कृति व सामाजिकता है। कुछ पुराणों में इनका उल्लेख मिलता है। 'तृतीय लिंग' के लिए किन्नर शब्द के प्रयोग पर ये आपत्ति जताते हैं, ठीक वैसे ही जैसे महाराष्ट्र के दलित अपने लिए प्रयुक्त 'हरिजन' शब्द पर।

'किन्नर विमर्श' की कविताओं का मूल उद्देश्य पाठक की भावनाओं को झंकृत करना होता है, ताकि समाज के अन्धेरे कोनों को प्रकाश से परिपूर्ण किया जा सके। जो स्थितियाँ या सन्दर्भ अनछुए रह गये हैं, उन

पर संवेदनशील ढंग से विचार किया जा सके और सामूहिक-सामाजिक प्रयास के द्वारा उनका परिष्कार किया जा सके। अपने आकाश की तलाश में संघर्षशील किन्नर के मनोभावों पर प्रकाश डालते हुए ललित सिंह राजपुरोहित ने लिखा है-

"बहुत खूबसूरत है तेरी धरती
कुमुदिनी,लताओं-पत्तियों से सजी-सँवरी
माना तुम्हारा लौकिक अवचेतन है सब न्यारा
लेकिन मुझे है मेरा आकाश प्यारा।
गुरूत्वाकर्षण से विकर्षण का-
नया नियम ढूँढ़ती
अपने आकाश की तलाश में।"[५]

किन्नर के रूप में जन्म लेना किसी भी व्यक्ति का स्वयं का चुनाव नहीं होता। इसलिए वह किसी भी तरह से पारिवारिक एवं सामाजिक लज्जा का कारण या बहिष्कार का पात्र नहीं हैं। इन्हें परिवार में सामान्य बच्चे की तरह पालन-पोषण का अधिकार होना चाहिए। शिक्षा, नौकरी, व्यवसाय सभी में इनके लिए समान अवसर और भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। सामाजिक स्तर पर जागरूकता अभियानों का संचालन किया जाना चाहिए ताकि मुख्यधारा से जुड़ने का मार्ग आसान हो जाये। इस तरह के बच्चे का जन्म अभिशाप नहीं, बल्कि प्रकृति द्वारा दिया गया अनुपम उपहार है। परम्परागत से भिन्न काम करना विशिष्टता का सूचक होता है। इन्हें 'अन्य' वर्ग में स्थान देकर अलगाववादी व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि अपनी शारिरिक सं'रचना और मनःस्थिति के अनुरूप स्त्री या पुरूष वर्ग को चुनने की छूट दी जानी चाहिए। आखिर वे भी हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्में अपने पिता की संतान हैं। वे ज्यादा नहीं माँग रहे हैं। इनकी माँग बस इतनी है कि हमें किन्नर या हिजड़ा कहकर न पुकारा जाए। आखिर हम भी तो इन्सान हैं। हमारे भी नाम हैं। हमे इन्सान समझा जाए। हमें हमारे नामों से पुकारा जाए।

जिस तरह अन्य प्रकार की शारीरिक विकलांगता को सामाजिक संवैधानिक स्तरपर स्वीकार किया गया है और विशिष्ट प्रावधानों की व्यवस्था की गयी है, वैसा ही अधिकार किन्नरों के भी मिलना चाहिए। चिकित्सा सुविधाओं के क्षेत्र में भी इनके लिए विशेष सुविधाएँ होनी चाहिए। इनके स्वयं के भीतर आत्मसन्मान पैदा करने के लिए तथा इनकी आवास सम्बन्धी स्थितियों में सुधार के लिए सरकारी, गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाओं को भी आगे आकर काम करना चाहिए। मगर हमारे समाज में ऐसी व्यवस्था नहीं है। प्रत्येक किन्नर का अपना अतीत होता है, उसका स्वयं का झेला संघर्ष होता है। विस्थापन का दंश कष्टकारी होता है, फिर वह चाहे परिवार, समाज या अपनी मिट्टी से मिला हो। प्रत्येक किन्नर को सर्वप्रथम यह दंश अपने घर-परिवार से मिलता हैं। किन्नरों की इस व्यथा पर प्रकाश डालती हुई गीतिका वेदिकाने लिखा है -

"अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुहाया
किसी का प्यार हूँ न वास्ता हूँ
न तो मांज़िल हूँ मैं न रास्ता हूँ
कि अनुभव पूर्णता का हो न पाया
अजब यह खेल रह-रह धूप छाया।
नहीं नारी हूँ मैं और नर नहीं हूँ
विवश हूँ मूँक हूँ पत्थर नहीं हूँ
जिसे मौका मिला उसने सताया
सभी ने रक्त के आँसू रूलाया।
बहिष्कृत और तिरस्कृत त्रासदी हूँ
भरी जी पीर से जीवन नदी हूँ
मिलन सागर को ही कब रास आया
वही एकाकीपन मुझमें समाया।"[६]

किन्नर को थर्ड जेण्डर के नाम से भी अभिहित किया जाता है। डॉ. पुष्पा गुप्ता ने थर्ड जेण्डर के संदर्भ में लिखा है, "जेण्डर शब्द लिंग सूचक है। 'थर्ड जेण्डर' शब्द रूप में या साकार जब जब सामने आता है तो उसका अर्थ परम्परागत स्त्री या पुरूष से इतर व्यक्तित्व

होता है। भारत जैसे देश में, जहाँ शिवलिंग और योनि की पूजा होती है, जहाँ शिव के अर्धनारीश्वर रूप की सामाजिक स्वीकृति है, जहाँ यह माना जाता है कि मनुष्य के भीतर स्त्री और पुरूष दोनों भावों का संतुलन ही उसे सफलता की ओर ले जाता है, वहाँ लैंगिक द्वैत से भिन्न यानी परम्परित स्वरूप से अलग अनुपम और अद्वितीय थर्ड जेण्डर व्यक्तित्व को सामाजिक रूप से हाशिए पर धकेल दिया गया है। जहाँ नर में नारायण का वास माना जाता है, जहाँ तैतीस करोड़ देवी-देवता हों, जहाँ विभिन्न गुणों के आधार पर वृक्षों को पूजा जाता हो, जहाँ अपनी सभ्यता और संस्कृति के श्रेष्ठ तम् होने का दम भरा जाता हो, वहाँ केवल एक जननांग दोष के कारण जीते-जागते व्यक्तियों को पशुवत जीना पड़ता हो, वहाँ यह त्रासद विडम्बना नही तो और क्या माना जाएगा?"[७]

किन्नर और अन्य लोगों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों की शारीरिक संरचना एक सी है। हँसते चेहरे, रोती ऑख एक सी हैं। दोनों का हृदय एक सा स्पन्दित होता है, साँसें और धड़कन एक सी हैं। अन्तर है तो कुछ जैविक संरचना का, इसलिए इन किन्नरों को कोई टॉपिक मत बनाओ। इन्हें अपनत्व भरा स्नेह का ऑचल दो; क्योंकि ये भी अपनी माँ के ही गर्भ में पले हैं। इनका जन्म भी माता-पिता के सम्बन्धों का ही प्रतिकल है। माँ का दूध पीकर ही इनके शरीर का अंग सृजित हुआ है। कुछ अगों के निर्धारण में कमी होने के कारण इन्हें अछूत बना दिया जाय, खुद से काटकर अनजानों की बस्ती में भेज दिया जाय, यह कोई मानवता नहीं है, इन्सानियत नहीं है। सत्या शर्मा 'कीर्ति, ने 'संवेदना के स्वर' कविता में लिखा है-

"सुनो!...
कोई टॉपिक नहीं हूँ मैं
मत उकेरो मुझ पर कोई चित्र
मत लिखो मुझ पर कोई लेख
कविता का कोई छन्द भी नहीं हूँ मैं
मैं तो हूँ तुम सा ही एक....
हाँ नहीं हूँ मैं कोई टॉपिक!
नहीं लिखो तुम कोई गीत
तुम्हारे सहानुभूति भरे से स्वर
एहसास कराते हैं मुझको
तुम सा नहीं होने का
बींधते हैं हृदय को मेरे
टूटता है ये दिल मेरा
तुम्हारी ऑखें, भाव तुम्हारे
कहे-अनकहे तुम्हारे हजारों सवाल
एक प्रश्नचिह्न लगा देते हैं अक्सर
मेरे वजूद के सम्पूर्ण होने का
अस्तित्व मेरे मनुष्य होने का।"[८]

किन्नर भारतीय संदर्भ में अर्धनारीश्वर के रूप हैं। इनमें माँ और पिता दोनों का रूप पाया जाता है। शब्द और अर्थ से परे इनका वजूद पूर्ण है, सम्पूर्ण है। इनमें अधूर भावों का विस्तार नहीं है, न तो स्त्रियों जैसी रिझाने की चिन्ता, तो पुरूषों जैसा पुरूषत्व दिखाने की चेष्टा। वह अपनी सृष्टि से खुश है; क्योंकि वह अपने अन्दर माँ और पिता दोनों का भाव देखता है। यही संयुक्त भाव अर्धनारीश्वर का स्वरूप है। सत्या शर्मा 'कीर्ति' ने 'अर्धनारीश्वर' कविता में इस भाव को बड़ी संजीदगी से व्यक्त कीया है-

"देखा है मैंने खुद के अन्दर
जन्म लेती हुई माँ को
गाती हूँ जब अनजाने से घरों में
आशीषों वाले कोई मधुर से गीत
तब मेरे दिल से उतर इक मासूम सी माँ
लेती है बलाएँ नन्हीं सी कली की।
अपनी ऑखों की गोद में बैठा झुलाती है वो झूले
और लौट आती है हौले से
अपने इस कठोर से तन में....।
देखा है पनपते पिता का वात्सल्य
जब अकेली मासूम के साथ-
खेलना चाहता है कोई वहशीपन
ते चिंघाड़ पड़ता है-

एक आदर्श पिता सा
करता है रक्षा हजार हाथों से
और लौट आता है
इस कोमल से दिल में।
हाँ तो सुनो,
मैं तो पूर्ण हूँ अपने मन के विस्तृत
धरातल पर.....
नहीं हूँ प्रकृति की गलती
मैं तो प्रकृति का उपहार कोई;
क्योंकि महसूस किया है मैंने अक्सर
मैं ही हूँ अर्धनारीश्वर।"[८]

समाज के अन्दर एक जड़ कर गयी मानसिकता के तहत मनुष्य को मनुष्य न मानना, बल्कि उसे श्रेणी में बाँटना, इस तरह की विचारधारा तथा जो एक सोच बन गयी है, यह हमें सामाजिक होने की बजाय असामाजिक करार देती है तथा अनेक प्रश्न खड़े करती है, इस पर चोट करती है। 'किन्नरों की अंतर्व्यथा' कविता में सत्या शर्मा 'कीर्ति' किन्नर सन्तान के माध्यम से माँ से सवाल करती हैं-

"दिया था तुमने ही जन्म मुझे
फिर दोष कहाँ था मेरा माँ।
दर-दर की ठोकर खाने मुझको
फिर कैसे छोड़ दिया था तुमने माँ।।
अपने घर भी रह सकता था तुम संग
पर महफिलों में अब नाचता हूँ मैं माँ।
सुना है अकसर लोगों से मैंने
बच्चों की हृदय वेदना जान जाती है माँ।।
क्या मेरे हृदय की चीत्कार तुम तक
कभी किसी क्षण पहुँच नहीं पाती है माँ।
लोगों के तिरस्कार से आहत होकर
तेरे स्नेह ऑचल को ढूँढ़ता फिरता हूँ माँ।।
हूँ तो तेरे ही बागों का फूल क्या यूँ ही
जीवन की राहों में बिखर जाऊँगा माँ।
खाकर दुनिया भर के तानों-जहर मैं
एक रोज तेरी यादों से चला जाऊँगा माँ।।
फिर भी नमन तुझको तूने जन्म दिया
बस मेरी कब्र पर कुछ आंसू गिरा देना माँ।
क्योंकि पूत कपूत हो सकता है पर
माता कुमाता तो नहीं होती है ना माँ।।"[९०]

सन्तान कैसी भी हो, माँ उसे त्याग नहीं सकती। पुरूष प्रधान समाज माँ की संवेदना नहीं समझता। इसीलिए वह झूठी शान के लिए अपनी सन्तान को भीख माँगने के लिए, दर-दर की ठोकरें खाने के लिए, नाना प्रकार के कष्टों को सहने के लिए माँ के ऑचल की छाया से दूर कर देता है, किसी अनजान के साथ रहने के लिए, गलत सही कार्य करने के लिए। किन्नरों के प्रति सामाजिक तिरस्कार निश्चित रूप से अत्यन्त दुःख दायी है। बचपन से ही किन्नरों के प्रति समाज तिरस्कार का भाव रखता है। जिन्हें प्रकृति ने तयशुदा जेण्डर नहीं दिया उनकी जिन्दगी नरक हो जाती है। वे घुट घुट कर जीवन भर मरते हैं। इस शरीर संरचना के लिए किन्नरों का कोई दोष नहीं हैं, फिर भी वे माता-पिता, भाई-बहन व परिवार के द्वारा हमेशा त्यागे गये, सताये गये व अपमान के भागी बने। इन्हें हिजड़ा, किन्नर, नपुंसक, बृहन्नला, आदि अपमान जनक शब्दों द्वारा संबोधिंत किया जाता है। किसी ने यह नहीं सोचा कि ये किन्नर भी समाज के बाकी इन्सानों की तरह मानवीय गीरमा के हकदार हैं। इस वर्ग से जुड़े इन्सानों की उपेक्षा वर्ग से जुड़े इन्सानों की उपेक्षा का आलम यह है कि एक सामान्य मनुष्य में भी यदि कुछ कमी हो तो उसे हिजड़ा, जनखा कहकर सम्बोधित किया जाता है। डॉ. शरद सिंह के अनुसार "आज मुख्यधारा के समाज में किसी व्यक्ति के साहस या उसकी वीरता पौंरूष अथवा मर्दानगी पर सवाल लगाना होता है तो उसे 'हिंजड़ा' कहकर दुत्कारा जाता है। यानी मुख्य यौनधारा के बहुसंख्यक पुलिंगी और स्त्रीलिंगी लोगों के लिए 'हिजड़ा' शब्द एक भद्दी गाली की तरह है। गर्भावस्था की गड़बडी के कारण पैदा होने वाले एक खास तरह की लौंगिक स्थिति वाले लाखों हिजड़ों के बारे में मुख्यधारा की लैंगिक स्थिति वाले

स्त्रियों और पुरूषों की यह नकारात्मक धारणा लैंगिक वर्चस्व का एक नमूना है।"[११] भरत प्रसाद ने अपनी 'कटीहुई डाल' कविता में किन्नरों की व्यथा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-

"कौन जानता है?
किस क्षण वे स्त्री हैं किस क्षण पुरूष,
किस क्षण कुछ भी नहीं
कौन बता संकता है?
होगा कोई एकाध अपनेनुभा अपना
पर अपने सिवाय अपना कोई भी नहीं।
बर्फ के मानिंद
ऑखों में जमे हुए दरिया में
असंतोष की बिजली सोती है
वे जब खड़ी हो जाती हैं
तो देखते ही बनती है
हार न मानने की अदा
रोती हैं तो पृथ्वी मानो थम जाती है।
आधी-अधूरी ममता की आत्मग्लानि में
इतिहास के अहम् सवालों में से एक है
उसके वजूद का इनकार।
मानिए या मानिए
पर उसके बगैर हासिल कहॉ होने वाला
मानव की यात्रा का शिखर।"[१२]

किन्नरों के लिए जैसे कोई एक निश्चित ठिकाना ही नहीं है। उनका एक निश्चित पता घर या परिवार नहीं है, बल्कि उनका कोई है ही नहीं। उनकी जिन्दगी एक पोस्ट बाक्स नं. की तरह है, जिसे देखते तो सब हैं, लेकिन अपनाता कोई नहीं है। वह अपने आप में एक पूर्ण पता है, लेकिन उसका कोई अता-पता नहीं है। आज का किन्नर समाज से पूछता है कि हमारा क्या अपराध है जिसके कारण हमें समाज से बहिष्कृत किया गया है। मैं भी इनसान हूँ, कोई आजूबा नहीं। क्या प्रकृति ने मुझे कोई अभिशाप दिया है या आत्मनिर्भर होकर जीने के लिए कोई वरदान है? किन्नर आज के 'सूचना के अधिकार का प्रयोग करता हुआ समाज से पूंछता है कि मै कौन हूँ यह सच्चाई जानने का अधिकार क्या मुझे है? वह पुछता है-

"क्या प्रयास किया था मैंने कोई,
या चाहना थी मुझे इस विकृति की,
पर, मन तो स्वस्थ है न मेरा,
कोई संस्कार तो नहीं विकृत मेरे....
फिर भी क्यूँ उपेक्षित हूँ.....तिरस्कृत हूँ।
नफरतों का भागी हूँ....
या फिर दया का पात्र हूँ।
न जाने 'की' हूँ या 'का' हूँ,
क्यूँ वंचित हूँ मैं
जीवन के उस पथ से जिस पर चलते सभी
मंदिर-मस्जिद -गुरूद्वारे
नहीं कराते मेल मेरा भी,
पूजा कैसे करूँ मैं, कैसे मैं तुमको याद करूँ,
क्यूँ शर्मिदा होते मुझसे, क्या मेरा अपराध भला?"[१३]

हमारे समाज में बहुत से ऐसे लोग हैं जो अंगों की पूर्णता के बाद भी वे माता-पिता बनने में सक्षम नहीं होते हैं, लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि परिवार, समाज उनका बहिष्कार कर देता है, उन्हे घर से बाहर निकाल देता है या उन्हें स्त्री-पुरूष कहने के बजाय अन्य कुछ कहने लग जाता है। जब ऐसी स्थिति में इन लोगों को ऐसा कुछ नहीं कहा जाता है, तो विक्षिप्त अंग के साथ या किसी अंग की कमी के साथ या अननांग की कमी के साथ जन्में बच्चों को किन्नर कहके क्यों पुकारा जाए, और उन्हें परिवार या समाज से पृथक क्यों किया जाए? जिन्हें हम किन्नर के नाम से पुकारते हैं, ये लोग अपने जननांग की कमी की वजह से सिर्फ यौन सुख प्राप्त नहीं कर सकते तथा सन्तान उत्पत्ति में सहयोग नहीं कर सकते, शेष कार्य तो यथावत वे एक मनुष्य के रूप में कर सकते हैं एवं कर रहे हैं। शबनम मौसी, कमला जान, आशा देवी, कमला किन्नर, मधु किन्नर आदि ट्रान्सजेंडर एक्टिकिस्ट लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी वे नाम हैं जिन्होंने चुनाव के बहुमत से विजय प्राप्त करके विधायक और महापौर

तक के पद सँभाले हैं। मानवी बंदोपाध्याय को देश की पहली किन्नर प्राचार्य होने का गौरव प्राप्त हैं तो तमिनाड की सत्य श्री शर्मिला ने देश की पहली किन्नर वकील बनकर यह सिध्द कर दिया है कि किन्नर अथवा थर्ड जेण्डर किसी भी विद्वत स्त्री-पुरूष की भाँति बुध्दिजीवी वर्ग की किसी भी ऊँचाई को छू सकते हैं।

समकालीन किन्नर परिवार से, समाज से प्रश्न करता है और कहता है कि तुम मुझे चाहे 'खोजवा' कहो, 'हिजड़ा' कहो या 'छक्का' कहो मैं उससे मायूस नहीं हूँ। नपुंसक, किन्नर या तीसरा जेण्डर कहना हमारे लिए (किन्नरों के लिए) एक प्रकार की गाली है। सच तो यह है कि नपुंसक यह परिवार, समाज या तंत्र है-

"है नपुंसक यह तंत्र, कुछ हुआ समाज भी यह,
न अपनाओ तुम मुझे चाहे,
क्योंकि न स्त्री हूँ मैं, पुरूष भी न तुम कहना मुझे,
पर यह बताओ तुम ही
अपने होने का द्वन्द किससे बाँटूँ मैं अब....।"

यह है किन्नर का अन्तर्द्वन्द्व। यह अन्तर्द्वन्द्व जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त बना रहता है। किन्नर, जिसे सरकार, परिवार, समाज सभी ने एक विशिष्ट वर्ग के अन्दर विभाजित कर दिया है, जबकि उनकी शरीर की अपंगता उन्हें मनुष्य होने से कहीं पर भी वंचित नहीं करती है, लेकिन जो सम्पूर्ण हैं और तथाकथित विवेकधारी भी हैं, यह चोट उन लोगों पर है कि वे लोग इन अपंगों, किन्नरों के साथ असामाजिक व्यवहार क्यों करते हैं? किन्नरों में स्त्रीत्व की भावना, उनकी मानवीय संवेदना और ममत्व, किन्नर होने के दर्द, उनके आक्रोश और संघर्ष आदि को समकालीन कविता में परत-दर-परत खोला गया है। पुरूष और स्त्री का अपने विपरीत लिंगी के प्रति आकर्षित होना लाजमी है, लेकिन हमारे समाज का वह वर्ग, जो वर्जित लिंगी है, उसके अकेलेपन का अन्दाजा किस प्रकार लगाया जाए, जो न पुरूष है न स्त्री फिर वह अपने विपरीत लिंगी के साथ किस प्रकार वक्त बिताये? समकालीन कविताएँ किन्नरों के अकेलेपन की, जिससे घिरा हुआ किन्नर समाज उसे झेलने को अभिशप्त हैं उसकी पड़ताल करती हैं। इन कविताओं में पंक्ति-दर-पंक्ति इस प्रश्न की अनुगूँज है कि किन्नरों को हमारा समाज क्यों साधारण मनुष्य की तरह नहीं जीने देता? उसे हिजड़ा नाम से अभिहित कर बहिष्कृत कर देने की मानसिकता का तिरस्कार समाज क्यों नहीं कर पाता? समाज की इसी भद्दी मानसिकता के कारण लोग अपने लैंगिक विकृत बच्चे को लड़का बनाकर रखना चाहते हैं ताकि वह समाज में उपहास का पात्र न बने। परिणाम यह होता है कि एक दिन वह लड़का स्वयं चलकर किन्नर समाज में सामिल हो जाता है। परिणाम -

"सूरज कभी उनके लिए नहीं उगता
न ही रौशनी, उनके हृदयान्धकार को
मिटाने में है समर्थ।
उनका स्त्रीनुमा शरीर
तैनात रहता हैं, जीवन के विकट मोर्चों पर
हूबहू मर्द की तरह।
नियति ने दो पाटों के बीच
पीस दिया इस कदर कि
साबित बच गया केवल तिरस्कार,
उनकी छाया तक के लिए
पृथ्वी पर कोई जगह नहीं।"[४]

सन्दर्भ संकेत :-

१. सिंह शरद (का.सं.) सामाजिक सरस्वती-शब्दों का उत्सव, वर्ष ४, अंक -१३-१४, अप्रैल-सितम्बर, २०१८ चित्रा मुद्गल का विचार पृ.१.
२. रोडे वैशाली(शब्दांकन), रॉय (डॉ.) शशिकला सुरेखा बनकर(अनुवाद) मैं हिजड़ा ... मैं लक्ष्मी, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र.सं.अन्तिम आवरण पृष्ठ से उध्दत.
३. आप्टे, वामन शिवराम संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. १०४३.

४. गीता अध्याय २, श्लोक ३.
५. सिंह शरद(का.स). सामाजिक सरस्वती - शब्दों का उत्सव ललित सिंह राजपुरोहित की कविता, पृ. ४२.
६. वही, पृष्ठ ४८.
७. वही, पृष्ठ ४९.
८. वही, पृष्ठ ७२.
९. वही, पृष्ठ ७३.
१०. वही, पृष्ठ ७३.
११. शरद सिंह, सागर दिनकर, २७ जुलाई, २०१०, पृ. ४.
१२. सिंह शरद (का.सं.) सामाजिक सरस्वती-शब्दों का उत्सव, पृ. ७६.
१३. वही, पृष्ठ ७८.
१४. वही, पृष्ठ ७७.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com